केशवलाल जेठालाल शाह

बनाम

मोहनलाल भगवानदास और एक अन्य

(2 अप्रैल, 1968)

(मुख्य न्यायमूर्ति एम० हिदायतुल्लाह, न्यायमूर्ति जे० सी० शाह, एस० एम० सीकरी, आर० एस० बछावत, जी० के० मित्तर, सी० ए० वैद्यलिंगम् और के० एस० हेगडे)

बोम्बे रेएट्स, होटेल ऐएड लोजिंग हाउस रेट्स कन्ट्रोल ऐक्ट, 1947 का 57, धारा 29 (1) और (2)–गुजरात ऐक्ट 1965 का 18 द्वारा संशोधित–क्या सशोधित धारा 29(2) उस मामले को लागू हो सकती है जिसमें अपील न्यायालय ने विनिश्चय संशोधित धारा के प्रवृत्त होने के पूर्व दिया हो– या क्या उच्च न्यायालय ऐसे मामले में केवल सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन शक्ति का प्रयोग कर सकता है ?

जुलाई, 1958 में प्रत्यर्थी ने अहमदाबाद में स्थित कुछ परिसरों (premises) की बाबत बेदखली की डिक्री के लिए और भाटक (rent) की बकाया और अन्य शोध्य (due) रकमों के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध वाद फाइल किया। विचारण न्यायालय ने बेदखली के दावे को खारिज कर दिया और भाटक की बकाया के लिए डिक्री पारित कर दी तथा भाटक की वृद्धि की अनुज्ञा दे दी। बोम्बे रेएट्स होटेल ऐएड लोजिंग हाउस रेट्स कन्ट्रोल ऐक्ट, 1947 का 57 की धारा 29 के अधीन अपील में डिक्री 25 फरवरी, 1963 को पुष्ट (confirm) कर दी गई। उस अधिनियम की धारा 29 (2) के, जैसी कि वह उस समय थी, अनुसार विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन अपील में किए गए विनिश्चय के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती थी। इसलिए प्रत्यर्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पिटीशन के द्वारा उच्च न्यायालय में आवेदन किया। जब यह पिटीशन लम्बित था तब बोम्बे ऐक्ट, 1947 का 57 गुजरात ऐक्ट 1965 का 18 द्वारा संशोधित कर दिया गया और संशोधित धारा 29 (2) में यह उपबन्ध किया गया था कि जबकि उपधारा (1) के अधीन अपील में किसी विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जाएगी किन्तु उच्च न्यायालय अपना यह समाधान करने के प्रयोजनार्थ कि अपील में ऐसा कोई विनिश्चय विधि के अनुकूल है, मामले को मँगवा सकेगा और ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे।

इस धारणा के आधार पर कि संशोधित अधिनियम उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित (pending) सब पिटीशनों को लागू होता है, उच्च न्यायालय ने मामले का विस्तृत अन्वेषण (investigation) करने के पश्चात् अपील न्यायालय का आदेश उलट (reverse) दिया और प्रत्यर्थी का वाद डिक्रीत कर दिया।

1968(4) eILR(PAT) SC 10

विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय में की गई अपील में अन्य बातों के साथ साथ अपीलार्थी ने यह दलील दी कि अपील न्यायालय का आदेश, जिसे अन्तिम रूप दिया जा चुका था और जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा परिसीमित अधिकारिता (limited jurisdiction) के अध्यधीन था, संशोधन अधिनियम में ऐसे उपबन्ध के अभाव में जो संशोधन को भूतलक्षी प्रभाव (retrospective) देता है, संशोधित धारा 29 (2) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपास्त (set aside) नहीं किया जा सकता।

अभिनिर्धारित— उच्च न्यायालय ने उस निर्णय के बारे में, जो उस अधिनियम से काफी पहले अन्तिम रूप ले चुका था, 1965 के अधिनियम 18 द्वारा विनिहित अधिकारिता (invested jurisdiction) का प्रयोग किया था। अतः अपील मंजूर की जानी चाहिए, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है और कार्यवाहियाँ उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित की जाती हैं कि वह पुनरीक्षण आवेदन पर इस आधार पर विचार करे कि उसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 लागू होती है जिसके अधीन वह फाइल किया गया तात्पर्यित था।

जब पुनरीक्षण आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन ग्रहण किया गया तब उच्च न्यायालय ने उस धारा द्वारा प्रदत्त परिसीमित अधिकारिता ग्रहण की और संशोधन अधिनियम में किए गये किसी अभिव्यक्त उपबन्ध के अभाव में उस धारा द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का विस्तार नहीं किया जा सकता।

यथा संशोधित धारा 29 (2) की भाषा में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह पता चल सके कि वह भूतलक्षी प्रवर्तन के लिए आशयित थी।

इन्दिरा सोहन लाल बनाम कस्टोडियन आफ इवैक्यूई प्रापर्टी, दिल्ली **और कुछ अन्य** (1955) 2 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 1117 और **मोतीराम बनाम सूरजभान और कुछ अन्य** (1960) 2 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 896 का प्रभेद बताया गया।

वोरा अब्बास भाई अली मोहम्मद बनाम हाजी गुलामनबी हाजी शफी भाई (1964) 5 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 157, **कोलोनियल शूगर रिफाइनिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम इरविंग** (1905) ए० सी० 369, **करिकापत्ती बिरय्या बनाम एन० सुब्बैया चौधरी** (1957) सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 488, **नाना बिन आबा बनाम शेकु बिन अन्दु**, इण्डियन ला रिपोर्ट्स 32 बोम्बे 337 और **दफेदार निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम कस्टोडियन, इवैक्यूई प्रापर्टी (पंजाब) और एक अन्य** (1962) 1 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 214 निर्दिष्ट किए गए।

यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या अपील न्यायालय का विनिश्चय विधि के अनुसार है, उच्च न्यायालय पर व्यापक अधिकारिता प्रदत्त करके विधान मंडल ने प्रक्रिया के विषय में विधान करने का प्रयत्न नहीं किया है। उसने तो अभिव्यक्त रूप से उच्च न्यायालय पर उन प्रश्नों पर पुनः विचार करने की शक्ति प्रदत्त करने का प्रयास

किया जिनके बारे में यह समझा जाता है कि वे उस समय तक अन्तिम रूप से विनिश्चित हैं।

यथा संशोधित धारा 29 (2) अपने निबन्धनों के अनुसार उच्च न्यायालय को यह अधिकारिता प्रदत्त करती है कि वह अपना यह समाधान करने के लिए कि अपील में जो विनिश्चय किया गया है वह विधि के अनुसार है, मामले का अभिलेख मँगवाए। यह अधिकारिता उच्च न्यायालय को संशोधन अधिनियम की तारीख के पूर्व प्राप्त नहीं थी। यह नहीं कहा जा सकता कि संशोधन खण्ड से किसी ऐसे पूर्व विद्यमान विधान को, जो संदिग्ध या त्रुटिपूर्ण था, केवल स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

सिविल अपीली अधिकारिता : 1067 की सिविल अपील सं० 1271

1963 के सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं० 1010 में गुजरात उच्च न्यायालय के तारीख 2/3 मार्च, 1967 वाले निर्णय और डिक्री के विरुद्ध विशेष इजाजत लेकर की गई अपील।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री बी० सी० मिश्र और एम० वी० गोस्वामी
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री ए०० के० झावेरी, के० एल० हाथी और अतिकुर रहमान

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति जे० सी० शाह ने दिया।

न्यायमूर्ति शाह

प्रत्यर्थियों ने अहमदाबाद में स्थित नगरपालिका गणना सं० 1754 वाली दुकान की बाबत बेदखली (ejectment) की डिक्री के लिए और भाटक (rent) की बकाया और अतिरिक्त करों के लिए अपीलार्थी के विरुद्ध वाद चलाया। विचारण न्यायालय ने बेदखली के दावे को खारिज कर दिया और भाटक की बकाया के लिए डिक्री पारित कर दी तथा भाटक की वृद्धि की अनुज्ञा दे दी। बोम्बे रेण्ट्स, होटल ऐण्ड लोजिंग हाउस रेट्स कण्ट्रोल ऐक्ट, 1947 का 57 की धारा 29 के अधीन अपील में डिक्री 25 फरवरी, 1963 को पुष्ट कर दी गई। उस अधिनियम की धारा 29 (2) के, जैसी कि वह उस समय थी, अनुसार प्रथम बार के न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उपधारा (1) के अधीन अपील में किए गए विनिश्चय के विरुद्ध अपील नहीं की जा सकती थी। तदनुसार प्रत्यर्थी ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पिटीशन के द्वारा गुजरात उच्च न्यायालय में आवेदन किया। जब यह पिटीशन उच्च न्यायालय में लम्बित था तब बोम्बे ऐक्ट, 1947 का 57 गुजरात ऐक्ट 1965 का 18 द्वारा संशोधित कर दिया गया और धारा 29 की उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की गई—

* "No further appeal shall lie against any decision in appeal under sub-sec. (1), but the High Court may, for the purpose of satisfying itself that any such decision in appeal was according to law, call for the case in which such decision was taken and pass such order with respect thereto as it thinks fit."

इस धारणा के आधार पर कि संशोधित अधिनियम द्वारा उच्च न्यायालय उन सब पिटीशनरों का, जो उस तारीख को, जिस तारीख को संशोधित धारा प्रवृत्त हुई, लंबित थे, विनिश्चय करने के लिए इस प्रकार सशक्त था मानों वह संशोधित धारा उन्हें लागू होती हो। प्रत्यर्थी द्वारा उस पिटीशन में ये प्रश्न उठाए गए थे (1) क्या अभिधारी (tenant) ने यह साबित कर दिया है कि वह मानक भाटक देने के लिए तैयार और इच्छुक था और क्या अधिनियम की धारा 12 (1) के अर्थान्तर्गत वृद्धि करने की अनुज्ञा दी गई थी, (2) क्या अभिधारी को भाटक की बकाया तथा अनुज्ञात वृद्धियाँ और छह मास से अधिक के लिए कर की रकम देनी थी, और इसलिए क्या मामला अधिनियम की धारा 12 (3) (ए) के क्षेत्र (perview) में, न कि धारा 12 (3) (बी) के अधीन, आता है तथा (3) क्या किसी भी दशा में अभिधारी को अभिधारिता (tenancy) की शर्तों का पालन करने में असफल रहने पर अधिनियम की धारा 12 (1) या धारा 12 (3) (बी) के अधीन संरक्षण से निर्हकित (disentitle) किया गया था? उच्च न्यायालय ने इन प्रश्नों के बारे में विस्तृत अन्वेषण (investigation) किया और अपील न्यायालय का आदेश उलट दिया तथा प्रत्यर्थी का वाद डिक्रीत कर दिया। अपीलार्थी ने विशेष इजाजत लेकर इस न्यायालय में अपील की है।

इस न्यायालय ने **वोरा अब्बास भाई अली मोहम्मद बनाम हाजी गुलामनबी हाजी शफी भाई** (1) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अपील न्यायालय द्वारा बोम्बे ऐक्ट, 1947 का 57 की धारा 29 के अधीन किए गए आदेश के विरुद्ध सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पिटीशन में उच्च न्यायालय को केवल इसलिए आदेश अपास्त करने की शक्ति नहीं थी कि उसकी राय में निर्णय तथ्य की भूल या विधि की भूल के आधार पर आक्षेपनीय था। उच्च न्यायालय तो उस धारा के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग केवल तब कर सकता था जब अपील न्यायालय ने अधिकारिता

---

* हिन्दी में यह इस प्रकार हो सकता है—

उपधारा (1) के अधीन अपील में किसी विनिश्चय के विरुद्ध कोई और अपील नहीं की जाएगी किन्तु उच्च न्यायालय अपना यह समाधान करने के प्रयोजनार्थ कि अपील में ऐसा कोई विनिश्चय विधि के अनुकूल है, ऐसे मामले को मँगवा सकेगा जिसमें ऐसा विनिश्चय किया गया हो और उस सम्बन्ध में ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जैसा वह ठीक समझे।

(1) (1964) 5 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 157

के बाहर कार्रवाई की होती या अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में असफल होता या अपनी अधिकारिता (Jurisdiction) का प्रयोग करते समय तात्विक अवैधता या अनियमितता से कार्रवाई की होती। इसके पश्चात् गुजरात के विधान मण्डल ने 1965 के ऐक्ट 18 द्वारा धारा 29 (2), उपवर्णित रीति में संशोधित कर दी जिससे उच्च न्यायालय को वह अधिकारिता प्रदत्त हुई जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन प्रयोक्तव्य अधिकारिता से अधिक व्यापक है।

अपीलार्थी के काउन्सेल ने यह दलील पेश की कि प्रत्यर्थी द्वारा उठाए गए प्रश्नों की जाँच कराने में उच्च न्यायालय ने उस अधिकारिता का प्रयोग किया है जो उसके पास नहीं थी। काउन्सेल ने यह दलील दी कि अपील करने का अधिकार–और इस पद के अन्तर्गत पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने में वरिष्ठ न्यायालय में अपील करना आता है–मुकदमे के साथ ही लगा होता है जब कि वह प्रारंभ किया जाता है और किन्हीं पश्चात्वर्ती संशोधनों का प्रभाव इस पर तब तक नहीं पड़ता जब तक कि संशोधन को भूतलक्षी प्रवर्तन देने वाला कोई अभिव्यक्त उपबन्ध नहीं किया जाता और यह कि अपील करने का अधिकार जो मूलतः मुकदमे से संलग्न था तब तक उस पर लागू रहेगा जब तक कि उसका अंतिम रूप से विनिश्चय नहीं हो जाता। काउन्सेल ने इस दलील के समर्थन में **कोलोनियल शूगर रिफाइनिंग कम्पनी लिमिटेड बनाम इरविंग** (2); **गरिकापत्ती वीरय्या बनाम एन० सुब्बैया चौधरी** (3) **और नाना बिन आबा बनाम शेकु बिन अन्दु** (4) के मामलों में किए गए विनिश्चयों का सहारा लिया।

काउन्सेल ने इसके अनुकल्प में यह दलील दी कि अपील न्यायालय का आदेश, जिसे अन्तिम रूप दिया जा चुका था और जो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा परिसीमित अधिकारिता के प्रयोग के अध्यधीन था, संशोधन अधिनियम में ऐसे उपबन्ध के अभाव में जो संशोधन को अभिव्यक्त रूप से या आवश्यक विवक्षा द्वारा भूतलक्षी प्रभाव देता है, संशोधन अधिनियम की, जो उस तारीख के पश्चात् अधिनियमित किया गया था जिस तारीख को अपील न्यायालय का निर्णय दिया गया था, धारा 29 (2) द्वारा उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपास्त नहीं किया जा सकता। हम प्रथम प्रश्न पर कोई मत अभिव्यक्त करना आवश्यक नहीं समझते क्योंकि हमारे निर्णयानुसार दूसरे प्रश्न पर, जिसे काउन्सेल ने उठाया है, यह अपील सफल होनी चाहिए।

जिस वाद से यह अपील पैदा हुई है उसे प्रत्यर्थी ने 22 जुलाई, 1958 को फाइल किया था। उसका विनिश्चय 28 अक्टूबर, 1961 को किया गया। अपील न्यायालय ने उस अपील का विनिश्चय 25 फरवरी, 1963 को किया और 17 जून, 1965 को

(2) (1905) एस० सी० 369

(3) (1957) सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 488

(4) आई० एल० आर० 32 बाम्बे 337

1965 का संशोधन अधिनियम 18 प्रवृत्त हुआ। उच्च न्यायालय ने उस निर्णय के बारे में, जो उस अधिनियम से काफी पहले अन्तिम रूप ले चुका था, 1965 के अधिनियम 18 द्वारा विनिहित अधिकारिता का प्रयोग किया था। यह सत्य है कि इस न्यायालय ने **इन्दिरा सोहन लाल बनाम कस्टोडियन आफ इवैक्यूई प्रापर्टी, दिल्ली और कुछ अन्य** (5) में कोलोनियल शूगर रिफाइनिंग कम्पनी लिमिटेड (2) के मामले में जुडिशियल कमेटी के निर्णय का प्रभेद बताया और पृष्ठ 1133 पर निम्नलिखित विचार व्यक्त किए—

* "......it appears to be clear that while a right of appeal in respect of a pending action may conceivably be treated as a substantive right vesting in the litigant on the commencement of the action–though we do not so decide—on such vested right to obtain a determination with the attribute of finality can be predicated in favour of a litigant on the institution of the action. By the very terms of section 5–B of East Punjab Act XIV of 1947 finality attaches to it on the making of the order. Even if there be, in law, any such right at all as the right to a determination with the attribute of finality, it can in no sense be a vested or accrued right. It does not accrue until the determination is in fact made, when alone the right to finality becomes an existing right as in × × × ×"

---

* हिन्दी में यह इस प्रकार हो सकता है :—

"...ऐसा प्रतीत होता है कि यह बात स्पष्ट है कि लम्बित कार्रवाई के बारे में अपील का अधिकार, कार्रवाई प्रारम्भ हो जाने पर, मुकदमा करने वाले में सारवान् अधिकार के रूप में निहित हो जाता है, ऐसा मान लिया जा सकता है—यद्यपि हम ऐसा विनिश्चय नहीं करते हैं—किन्तु अन्तिमतायुक्त अवधारण करा लेने का कोई निहित अधिकार कार्रवाई संस्थित हो जाने पर मुकदमा करने वाले के पक्ष में हो जाता है, ऐसी बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। 1947 के ईस्ट पंजाब ऐक्ट 14 की धारा 5–बी के निबन्धनों से ही उसे आदेश के किए जाने पर अन्तिम रूप प्राप्त होता है। यदि विधि में कोई ऐसा अधिकार विद्यमान भी हो जैसा कि अन्तिमतायुक्त अवधारण का अधिकार है तो भी वह किसी भी प्रकार से विनिहित या प्रोद्भूत अधिकार नहीं हो सकता। यह तब तक प्रोद्भूत नहीं हो सकता जब तक कि अवधारण वास्तव में कर नहीं लिया जाता और केवल तभी अन्तिमता का अधिकार विद्यमान अधिकार बनता है जसा कि × × × ×।

(5) (1955) 2 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 1117

इन्दिरा सोहन लाल के मामले (5) में न्यायालय एक ऐसे मामले पर विचार कर रहा था जिसमें कानून के संशोधन से वह अन्तिमता जो यदि संशोधन न किया गया होता तो उसको लग जाती, आदेश किए जाने से पूर्व वापस ले ली गई। इस न्यायालय ने **दफेदार निरंजन सिंह और एक अन्य बनाम कस्टोडियन, इवैक्यूई प्रापर्टी (पंजाब) और एक अन्य** (6) में इन्दिरा सोहन लाल के मामले (5) से प्रभेद बताया और यह अभिनिर्धारित किया कि कोई आदेश जो विधि के किसी उपबन्ध के अधीन अन्तिम हो गया है किसी संशोधन अधिनियम के अधीन भूतलक्षी प्रभाव देकर प्रभावित नहीं किया जा सकता जिससे कि मूल उपबन्ध के अधीन अर्जित अन्तिमता से वह आदेश वंचित किया जा सके। दफेदार निरंजन सिंह के मामले (6) में विवादग्रस्त सम्पत्ति को निर्मुक्त करने वाला आदेश पटियाला अध्यादेश, सम्वत् 2004 का सं० 9 के अधीन कस्टोडियन आफ इवैक्यूई प्रापर्टी द्वारा पारित किया गया था। कस्टोडियन के आदेश के विरुद्ध कोई अपील फाइल नहीं की गई थी और उसी कारण से उसने अन्तिम रुप धारण कर लिया था। किन्तु वह आदेश एडमिनिस्ट्रेशन आफ इवैक्यूई प्रापर्टी ऐक्ट, 1950 का 31 की धारा 58 (3) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए कस्टोडियन ने अपास्त कर दिया। इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूँकि उस आदेश ने तत्पश्चात् प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में अन्तिम रूप धारण कर लिया है इसलिए धारा 58 (3) को भूतलक्षी प्रवर्तन देने वाली किसी निश्चित बात के अभाव में, पूर्व आदेश की अन्तिमता को वापस नहीं लिया जा सकता।

प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने **मोती राम बनाम सूरज भान और कुछ अन्य** (7) में इस न्यायालय के निर्णय का सहारा लिया। उस मामले में इन्दिरा सोहन लाल के मामले(5) के अनुसार यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उच्च न्यायालय मुकदमा प्रारम्भ होने के पश्चात् अधिनियमित संशोधन अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए उस आदेश को अपास्त कर सकता है जो उस तारीख को जब कि मुकदमा प्रारम्भ हुआ था, प्रवृत्त विधि के अनुसार उच्च न्यायालय की अधिकारिता के अध्यधीन नहीं था। मोती राम के मामले (7) में ईस्ट पंजाब अर्बन रेण्ट रैस्ट्रिक्शन ऐक्ट, 1949 की धारा 13 के अधीन अगस्त, 1956 में एक दुकान से अपीलार्थी की बेदखली के लिए आवेदन किया गया था। रैण्ट कण्ट्रोलर के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए अधिनियम की धारा 15 के अधीन उपबन्ध किया गया है और धारा 15 की उपधारा (4) में यह उपबन्ध है कि अपील प्राधिकारी का विनिश्चय, और ऐसे विनिश्चय के ही अध्यधीन कण्ट्रोलर का आदेश, अन्तिम होगा। संशोधन अधिनियम (1956 का 29) से, जो 24 सितम्बर, 1956 को प्रवृत्त हुआ, उच्च न्यायालय को सशक्त किया गया था कि वह ऐसे आदेश की वैधता या औचित्य के बारे में अपना समाधान करने के लिए अधिनियम के अधीन पारित किसी आदेश से सम्बन्धित अभिलेखों को मँगा सकेगा या उनकी परीक्षा

---

(6) (1962) 1 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 214
(7) (1960) 2 सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट्स 896

कर सकेगा। भू-स्वामी का आवेदन रैण्ट कण्ट्रोलर द्वारा खारिज कर दिया गया और अपील में अपील प्राधिकारी ने उस आदेश को पुष्ट कर दिया। तत्पश्चात् भू-स्वामी के आवेदन पर उच्च न्यायालय ने उस आदेश को उलट दिया। इस न्यायालय ने इस दलील को नामंजूर कर दिया कि उच्च न्यायालय को यथासंशोधित धारा 15 (3) के अधीन पुनरीक्षण आवेदन को ग्रहण करने की अधिकारिता नहीं थी। जो विनिश्चय संशोधित अधिनियम की धारा 15 (5) के अधीन अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के समक्ष लाया गया था वह विनिश्चय, अधिनियम का संशोधन 24 सितम्बर, 1956 को हो जाने के पश्चात् 19 अगस्त, 1958 को दिया गया। जिस तारीख को विनिश्चय दिया गया था उस तारीख को आदेश को कोई अन्तिमता प्राप्त नहीं हुई थी क्योंकि यह उस आदेश के अध्यधीन था जो ऐसे पुनरीक्षण आवेदन में पारित किया जा सकता था जो संशोधित अधिनियम के अधीन उच्च न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया होता। इसलिए मोती राम का मामला (7) इस मामले को लागू नहीं होता है।

प्रत्यर्थी के कांउन्सेल ने यह कहा है कि गुजरात ऐक्ट (1965 का 18) द्वारा यथा संशोधित बोम्बे ऐक्ट (1947 का 57) की धारा 29 (2) द्वारा उच्च न्यायालय की अधिकारिता का जो विस्तार हुआ उसका सम्बन्ध किसी विद्यमान अधिकार से नहीं है बल्कि प्रक्रिया के विषय से है और उसी कारण से यथासंशोधित अधिनियम सुनवाई के समय लागू होता है और प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए पुनरीक्षण आवेदन का विनिश्चय करते समय उच्च न्यायालय संशोधित अधिनियम को लागू करने में आबद्ध था। किन्तु जब पुनरीक्षण आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन ग्रहण किया गया तब उच्च न्यायालय ने उस धारा द्वारा प्रदत्त परिसीमित अधिकारिता ग्रहण की और संशोधन अधिनियम में किए गए किसी अभिव्यक्त उपबन्ध के अभाव में उस धारा द्वारा प्रदत्त अधिकारिता का विस्तार नहीं किया जा सकता। यह प्रश्न कि क्या उच्च न्यायालय अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपील न्यायालय के विनिश्चय को अपास्त (set aside), उपान्तरित (modify) या परिवर्तित (alter) कर सकता है, प्रक्रिया का विषय नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 द्वारा अनुज्ञात परिसीमित क्षेत्र (limited field) के भीतर उच्च न्यायालय द्वारा संवीक्षा (scrutiny) के अध्यधीन रहते हुए अपील न्यायालय का आदेश अन्तिम था। यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या अपील न्यायालय का विनिश्चय विधि के अनुसार है, उच्च न्यायालय को और व्यापक अधिकारिता प्रदत्त करके विधान मंडल ने प्रक्रिया के विषय में विधायन करने का प्रयत्न नहीं किया। विधान मंडल ने तो अभिव्यक्त रूप से उच्च न्यायालय को उन प्रश्नों पर पुनः विचार करने की शक्ति प्रदत्त करने का प्रयास किया जिनके बारे में उस समय तक यह समझा जाता था कि वे अन्तिम रूप से विनिश्चित हैं।

प्रत्यर्थी के काउन्सेल ने यह भी निवेदन किया कि यथासंशोधित धारा 29 (2) से यह आशयित (intended) है कि उसका भूतलक्षी प्रवर्तन (retrospective operation) हो क्योंकि संशोधन अधिनियम स्पष्टीकारक विधान (explanatory legislation) की

1968(4) eILR(PAT) SC 10

प्रकृति का है। यथासंशोधित धारा 29 (2) की भाषा में कोई ऐसी बात नहीं है जिससे यह पता चल सके कि वह भूतलक्षी प्रवर्तन के लिए आशयित थी। यथासंशोधित धारा 29 (2) अपने निबन्धनों के अनुसार उच्च न्यायालय को यह अधिकारिता प्रदत्त करती है कि वह अपना यह समाधान करने के लिए कि अपील में जो विनिश्चय किया गया है वह विधि के अनुसार है, मामले का अभिलेख मँगवाए। यह अधिकारिता उच्च न्यायालय को संशोधन अधिनियम की तारीख के पूर्व प्राप्त नहीं थी। संशोधन खण्ड में किसी ऐसे पूर्व विद्यमान विधान को जो संदिग्ध या त्रुटिपूर्ण था, स्पष्ट करने का प्रयास नहीं किया गया है। पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए पिटीशन ग्रहण करने की उच्च न्यायालय की शक्ति सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 से व्युत्पन्न संशोधन से पूर्व विद्यमान थी और विधान मंडल ने संशोधन अधिनियम द्वारा उस उपबन्ध का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया है। स्पष्टीकारक अधिनियम साधारणतया पूर्व अधिनियम के किसी स्पष्ट लोप (omission) या उसके अर्थ के बारे में जो सन्देह हों उन्हें दूर करने के लिए पारित किया जाता है। धारा 29 (2), अधिनियमित की जाने से पूर्व, अपनी विवक्षा तथा अपनी अभिव्यक्ति में सुस्पष्ट थी। जो शब्द उसमें प्रयोग किए गए हैं उनके अर्थ के बारे में कोई सन्देह नहीं था और उसकी पदरचना में कोई लोप नहीं था जिसकी पूर्ति की अपेक्षा संशोधन में थी।

अतः अपील मंजूर की जाती है और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है और कार्यवाही उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित (remand) की जाती है कि वह पुनरीक्षण आवेदन पर इस आधार पर विचार करे और निपटाये कि उसे सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 लागू होती है जिसके अधीन वह फाइल किया गया तात्पर्यित है। इस न्यायालय के खर्चे वही होंगे जो उच्च न्यायालय के हैं।

अपील मंजूर कर ली गई।